॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

कृष्णयजुर्वेदीय

अमृतनादोपनिषद्

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

प्रणवोपासना; योगके छः अङ्ग; प्राणायामकी विधि; योग-साधनका फल; पाँचों प्राणोंका रंग

बुद्धिमान् पुरुष शास्त्रोंका अध्ययन करके एवं बार-बार उनका अभ्यास करके ब्रह्मविद्याकी प्राप्तिके परम कारणभूत इस बिजलीकी चमकके समान क्षणप्रकाशी जीवनको व्यर्थ नष्ट न करे। ॐकारके रथमें बैठकर और भगवान् विष्णुको सारथि बनाकर ब्रह्मलोकके यथार्थ पदका अन्वेषण करते हुए भगवान् रुद्रकी आराधनामें तत्पर होना चाहिये।* तबतक रथसे चले, जबतक रथसे चलने योग्य मार्गपर ही स्थिति हो। जब वह मार्ग पूरा हो जाता है, तब उस रथ-मार्गपर खड़े हुए रथको छोड़कर मनुष्य स्वतः आगे चला जाता है। तात्पर्य यह कि जबतक लक्ष्यकी प्राप्ति न हो जाय, तबतक दृढ़तापूर्वक साधनमें संलग्न रहना चाहिये; लक्ष्य-सिद्धिके पश्चात् अनावश्यक साधन स्वतः छूट जाते हैं।

प्रणवकी जो अकार आदि मात्राएँ हैं, उनके लिङ्गभूत जो '**जागरितस्थानः सप्ताङ्गः एकोनविंशतिमुखः**' इत्यादि पद हैं, उनके आश्रयभूत विश्व, विराट् आदिके चिन्तनपूर्वक उनका त्याग करके स्वरहीन (केवल नादरूप) मकारके द्वारा उसके अर्थभूत प्राज्ञ ईश्वरका चिन्तन करनेसे साधक क्रमशः उस सूक्ष्मपद (तुरीयतत्त्व)-में प्रवेश करता है, जो अकारादि स्वरों और ककारादि व्यञ्जनोंसे व्यवहृत होनेवाले सम्पूर्ण प्रपञ्चसे सर्वथा परे है। शब्द-स्पर्शादि पाँचों विषय, उन्हें ग्रहण करनेवाली इन्द्रियाँ तथा अत्यन्त चञ्चल मन—इनको सूर्यस्वरूप अपने आत्माकी किरणोंके रूपमें देखे। अर्थात् आत्मप्रकाशसे ही मनकी सत्ता है और उसी आत्मप्रकाशकी बाह्य सत्तासे शब्दादि विषय भी सत्तावान् हैं, ऐसा चिन्तन करे। इस प्रकार अनात्मपदार्थोंकी ओरसे मन और इन्द्रियोंको समेटकर केवल आत्माके चिन्तनको 'प्रत्याहार' कहा जाता है। प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, तर्क (विचार) तथा समाधि—ये योगके छः अङ्ग बताये गये हैं॥ १—६॥

जैसे पर्वतोंमें उत्पन्न स्वर्णादि धातुओंका मल उनको अग्निमें तपानेसे भस्म हो जाता है, वैसे ही इन्द्रियोंद्वारा लाये गये दोष प्राणोंके रोकने (प्राणायाम करने)-से भस्म हो जाते हैं। प्राणायामके द्वारा दोषों (इन्द्रियोंमें आये हुए विकारों)-को तथा धारणाके द्वारा पापों (इन्द्रिय-लोलुपताके संस्कारों)-को भस्म कर दे। इस प्रकार पापों तथा उनके संस्कारोंका नाश करके आराध्यके मनोहर स्वरूपका चिन्तन करे। आराध्यके उस मनोहर स्वरूपका चिन्तन करते हुए वायुको भीतर स्थिर रखना (कुम्भक करना), रेचक करना (श्वासको छोड़ना) तथा वायुको खींचना (पूरक करना)—इस प्रकार रेचक, पूरक तथा कुम्भकके रूपमें तीन प्रकारके प्राणायाम बताये गये हैं। प्राण-शक्तिका विस्तार करनेवाला साधक (**ॐ भूः, ॐ भुवः,**

---

* यहाँ प्रणव तथा उसकी मात्राओंके चिन्तनकी बात कही गयी है। प्रणवकी तीन मात्राएँ हैं—अकार, उकार तथा मकार। अकार विष्णुका, उकार ब्रह्माका तथा मकार भगवान् रुद्रका वाचक है। इन तीन मात्राओंका क्रमशः चिन्तन करना चाहिये। विष्णुको सारथि बनाना 'अकार' रूप प्रथम मात्राका चिन्तन करना है। ब्रह्मलोक-पदका अन्वेषण उकारका चिन्तन है और रुद्रकी आराधनाका तात्पर्य मकारका चिन्तन है।

ॐ स्वः, ॐ महः, ॐ जनः, ॐ तपः, ॐ सत्यम्—इस प्रकार) व्याहृतियों तथा प्रणवसहित सम्पूर्ण गायत्री-मन्त्रका (**ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्** इस) शिरोभागके साथ पूरक, कुम्भक और रेचक करते समय जब तीन-तीन बार मानस-पाठ करे, तब उसे एक 'प्राणायाम' कहते हैं॥ ७—१०॥

प्राणवायुको आकाशमें निकालकर हृदयको वायुशून्य एवं चिन्तनशून्य करके शून्यभावमें मनको लगा दे, यह रेचक प्राणायामका लक्षण है। जैसे मनुष्य मुखसे कमलनालद्वारा धीरे-धीरे जलको खींचता है, उसी प्रकार धीरे-धीरे वायुको अपने भीतर ग्रहण करना चाहिये—यह पूरकका लक्षण है। न तो श्वासको भीतर खींचे, न बाहर ही निकाले और न शरीरको हिलाये ही—इस प्रकार प्राणवायुका निरोध करे; यह कुम्भक प्राणायामका लक्षण है॥ ११—१३॥

रूपोंको अंधेके समान देखे, शब्दको बहरेके समान सुने तथा शरीरको लकड़ीके समान समझे। अर्थात् रूप, शब्द तथा शरीरके सुख-दुःखादिसे तनिक भी प्रभावित न हो। यह 'प्रशान्त' का लक्षण है। बुद्धिमान् पुरुष मनको संकल्पात्मक (संकल्पस्वरूप) समझकर उसे आत्मामें (बुद्धिमें) विलीन कर दे तथा उस बुद्धिको भी परमात्मचिन्तनमें स्थापित करे—लगाये। इसीको 'धारणा' कहा गया है। शास्त्रोंके अनुकूल ऊहा (युक्तिपूर्वक विचार) 'तर्क' कहा जाता है और जिसे प्राप्त करके दूसरे समस्त प्राप्तव्योंका अपमान कर देता है—सबको तुच्छ समझ लेता है, उस स्थितिको 'समाधि' कहा जाता है॥ १४—१६॥

भूमिके समान एवं रमणीय तथा (अशुद्धता, विषमता, कीटादियुक्तता प्रभृति) सम्पूर्ण दोषोंसे रहित भागमें मानसिक रक्षा (दिग्बन्धादि) करके और मण्डल (**यदेतन्मण्डलं तपति**—इत्यादि मण्डल-ब्राह्मण)-का जप करके पद्मासन, स्वस्तिकासन अथवा भद्रासनमेंसे किसी योगासनको भली प्रकार लगाकर उत्तरकी ओर मुख करके बैठे। फिर एक अँगुलीसे नासिकाके एक छिद्रको बंद करके दूसरे खुले छिद्रसे वायुको खींचकर, दोनों नासापुटोंको बंदकर उस वायुको धारण करे। उस समय तेजोमय शब्द (प्रणव)-का ही चिन्तन करे। वह शब्द 'ॐकार' स्वरूप एकाक्षर ब्रह्म ही है। फिर इसी 'ॐ' इस एकाक्षर ब्रह्मका ही चिन्तन करता हुआ रेचक करे—वायुको धीरे-धीरे छोड़े। इस प्रकार अनेकों बार इस प्रणवस्वरूप दिव्य-मन्त्रके द्वारा (प्राणायाम करते हुए) अपने चित्तके मलको दूर करे॥ १७—२०॥

इस प्रकार प्राणायामद्वारा पापराशिका नाश करके पहले बताये हुए (अकार, उकार, मकार, बिन्दु तथा नादरूप) प्रणव-मन्त्रका ध्यान करे अर्थात् प्रणवकी प्रत्येक मात्राके साथ उसके लोक, गुण एवं अधिदेवताका चिन्तन करते हुए प्राणायाम करे। इस प्रकारके प्रणवगर्भ प्राणायामको स्थूलातिस्थूल मात्रा* से अधिक कभी न करे। अपनी दृष्टिको तिर्यक् (सामनेकी ओर), ऊपरकी ओर अथवा नीचेकी ओर स्थिर करके महामति (परम बुद्धिमान्) साधक स्थिरतापूर्वक स्थित होकर, निष्कम्प (अङ्गचालनहीन) रहकर तब योगका अभ्यास करे॥ २१-२२॥

यह योग तालवृक्षके समान कुछ समयमें फल देनेवाला है और इसका धारण नियत योजनापूर्वक (अर्थात् जितना प्रथम प्रारम्भ करे, उसे उतना ही रखे या बढ़ाता जाय; पर न तो घटाये और न मध्यमें उसका विराम करे—इस प्रकार) करनेयोग्य है। इसमें द्वादश मात्राओंकी (प्रणवकी अ, उ, म तथा नादरूप चारों मात्राओंकी तीनों प्राणायामोंमें) आवृत्ति भी कालसे निश्चित कही गयी है। अर्थात् एक मात्राके लिये जितना समय दिया जाय, दूसरीके लिये भी उतना ही समय देना चाहिये। कोई मात्रा शीघ्र एवं कोई देरतक मनमें न जपी जाय॥ २३॥

यह प्रणव-नामक घोष बाह्य प्रयत्नसे उच्चारित होनेवाला नहीं है। यह व्यञ्जन नहीं है। स्वर भी नहीं है। कण्ठ, तालु, ओष्ठ और नासिकासे उच्चारित होनेवाला (सानुनासिक) भी नहीं है। यह रेफजातीय (अर्थात् मूर्द्धासे उच्चारित होनेवाला भी) नहीं है। दोनों

---

* एक समय इस प्रकारके प्रणवगर्भ प्राणायामकी अस्सी आवृत्तियोंको 'स्थूल मात्रा' कहते हैं। एक बार वायु रोककर अस्सी बार प्रणवके जप करनेको 'अतिस्थूलमात्रा' प्राणायाम कहते हैं और ऐसे प्राणायामकी अस्सी बार आवृत्ति 'स्थूलातिस्थूलमात्रा' प्राणायाम है। इससे अधिक प्राण रोकना या अधिक आवृत्ति करना हानिकर है। प्राणायाम प्रातः, मध्याह्न, सायं एवं अर्धरात्रिमें—इस प्रकार चार बार नित्य करना चाहिये।

ओष्ठोंके भीतर स्थित दन्तनामक स्थानसे भी इसका उच्चारण नहीं हो सकता। यह वह अक्षर है, जो कभी क्षरित (च्युत) नहीं होता अर्थात् यह नादके अव्यक्तरूपसे नित्य प्रकृतिमें विद्यमान रहता है। कहनेका तात्पर्य यह है कि प्रणवका प्राणायामके रूपमें तो उपर्युक्त प्रकारसे समयादि-संयमसे अभ्यास करना चाहिये और निरन्तर नादके रूपमें मनको उसमें लगाये रहना चाहिये॥ २४॥

योगी जिससे मार्ग देखता है, अर्थात् मनके द्वारा जिस-जिस स्थानको उसमें प्रवेश करके गमन करनेयोग्य मानता है, प्राण उसी मार्ग (द्वार)-से मनके साथ गमन करता है। अतएव प्राण श्रेष्ठ मार्गसे जाय, इसके लिये नित्य अभ्यास करना चाहिये। हृदयद्वार ही वायुके प्रवेशका द्वार है। इसी हृदयद्वारसे प्राण सुषुम्णामार्गमें प्रवेश करता है। इससे ऊपर ऊर्ध्वगमनका मार्ग है। सबसे ऊपर इस सुषुम्णामार्गमें मोक्षका द्वार (जिस मार्गसे प्राणोत्सर्ग होनेपर योगी मोक्ष प्राप्त करता है) ब्रह्मरन्ध्र है। इसीको योगी सूर्यमण्डल जानते हैं। (इसी सूर्य-मण्डल या ब्रह्मरन्ध्रको बेधकर प्राण छोड़नेसे मुक्ति होती है)॥ २५-२६॥

भय, क्रोध, आलस्य, अत्यन्त निद्रा, अधिक जागना, बहुत भोजन करना और सर्वथा निराहार रहना—इनको योगी सर्वदा छोड़ दे। इस विधिसे भली प्रकार जो क्रमशः (उत्तरोत्तर बढ़ाता हुआ) नित्य अभ्यास करता है, उसे तीन महीनोंमें स्वयं ही ज्ञान प्राप्त हो जाता है—इसमें सन्देह नहीं। चार महीनोंमें वह देवताओंको देखने लगता है, पाँच महीनोंमें देवताओंके समान शक्तिशाली हो जाता है और निःसन्देह छः महीनोंमें यदि उसकी इच्छा हो तो वह कैवल्य (जीवन्मुक्तावस्था)-को प्राप्त कर लेता है॥ २७—२९॥

पृथिवीतत्त्वकी धारणाके समय प्रणवकी पाँच मात्राओंका, जलतत्त्वकी धारणाके समय चार मात्राओंका, अग्नितत्त्वकी धारणाके समय तीन मात्राओंका, वायुतत्त्वकी धारणाके समय दो मात्राओंका, आकाशतत्त्वकी धारणाके समय एक मात्राका और स्वयं प्रणवके रूपमें उसके अर्धमात्रास्वरूपका चिन्तन करे। अपने शरीरमें ही मनके द्वारा (पैरसे मस्तकतक क्रमशः पृथिवी आदिकी) धारणा करके पञ्चभूतोंकी सिद्धि करके उनका चिन्तन करे। इस प्रकार प्रणव-धारणाद्वारा पञ्चभूतोंपर अधिकार प्राप्त होता है॥ ३०-३१॥

तीस अंगुल लंबा प्राण (श्वास) जिसमें प्रतिष्ठित है, वही इस प्राणवायुका अधिष्ठान (आश्रय) वास्तविक प्राण है। यही 'प्राण' नामसे विख्यात है। जो बाह्य प्राण है, वह तो इन्द्रियगोचर है; इस बाह्य प्राणमें एक लाख तेरह हजार छः सौ अस्सी निःश्वास (श्वास-प्रश्वास) एक दिन-रात्रिमें आते हैं॥ ३२-३३॥

आदि प्राण हृदयस्थानमें, अपान गुदास्थानमें, समान नाभिदेशमें तथा उदान कण्ठमें निवास करता है। व्यान सम्पूर्ण अङ्गोंमें सर्वदा व्यापक होकर रहता है। अब क्रमशः प्राणादि पाँचों वायुओंका रंग वर्णन किया जाता है। प्राणवायु लाल रंगकी मणिके समान कहा जाता है। अपान-वायु गुदाके मध्यमें इन्द्रगोप (बीरबहूटी) नामक कीड़ेके समान लाल है। नाभिके मध्यभागमें समानवायु गायके दूधके समान अथवा स्फटिक मणिके समान उज्ज्वल है। उदानवायु धूसर (मटमैले) और व्यान-वायु अग्नि-शिखाके रंगका अर्थात् प्रकाशमय है॥ ३४—३७॥

जिसका प्राण इस मण्डल (पञ्चतत्त्वात्मक शरीर-स्थान, वायु-स्थान एवं हृदयादि द्वारों)-को बेधकर मस्तकमें चला जाता है, वह जहाँ-कहीं भी मरे, फिर जन्म नहीं लेता। वह फिर जन्म नहीं लेता॥ ३८॥

॥ कृष्णयजुर्वेदीय अमृतनादोपनिषद् समाप्त॥

शान्तिपाठ

ॐ सह नाववतु। सह नौ भुनक्तु। सह वीर्यं करवावहै।
तेजस्वि नावधीतमस्तु। मा विद्विषावहै।
ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!